प्रवचन–5, गाथा–15

(यह पन्द्रहवीं) गाथा जरा सूक्ष्म है परन्तु मूल वस्तु है। जैनधर्म कोई वाड़ा नहीं, पक्ष नहीं; वह तो वस्तु का स्वरूप है।

अब कहते हैं, अपने यहाँ तक आया है – सामान्यज्ञान का आविर्भाव और ज्ञेयाकार ज्ञान का तिरोभाव.... क्या कहा? आत्मा ज्ञानस्वरूप त्रिकाल है, उसकी पर्याय में इस ज्ञान का अनुभव होना, यह ज्ञानाकार (ज्ञान) सामान्य आविर्भाव अर्थात् ज्ञान प्रगट हुआ – ऐसा कहा जाता है। ज्ञानस्वरूपी भगवान का अनुभव करने पर पर्याय में ज्ञान और आनन्द आवे, उसे यहाँ ज्ञान का अनुभव, उसे जैनशासन, उसे अनुभूति कहा जाता है। है? यहाँ तक तो आया है न?

...जब ज्ञानमात्र का अनुभव किया जाता है, तब ज्ञान प्रगट अनुभव में आता है... क्या कहते हैं? चैतन्यस्वरूप भगवान, वह ज्ञान और आनन्दमूर्ति है, उसकी ओर का लक्ष्य करके आत्मा का अनुभव किया जाता है, तब वह प्रसिद्ध (होता है) आत्मा प्रसिद्ध होता है कि मैं शुद्ध चैतन्य और आनन्द हूँ। ऐसे ज्ञान के सन्मुख (होकर) अनुभव करने पर आत्मा की प्रसिद्धि होती है, वह आत्मा की प्रसिद्धि, वह ज्ञान है, वह आनन्द है, वह जैनशासन है, वह अनुभूति है, वह सम्यग्दर्शन है, वह धर्म की प्रथम में प्रथम शुरुआत है। आहा...हा...!

ऐसा... **ज्ञान प्रगट अनुभव में आता है....** यह क्या कहा? आत्मा चैतन्यस्वरूप द्रव्य है, उसकी ओर का अनुभव करने पर पर्याय में सामान्यपना अर्थात् ज्ञेयों के आकार के भेद से खण्ड होता है, वह खण्ड न होकर, ज्ञानाकार का ज्ञानस्वभाव पर्याय में प्रगट होता है, उसे ज्ञान का अनुभव, उसे जैनशासन,उसे समकित और सम्यग्ज्ञान कहते हैं। आहा...हा...! इतना सब....! है न? **...तब ज्ञान प्रगट अनुभव में आता है....** ज्ञानमात्र का अनुभव करने पर, संयोगी चीज से लक्ष्य छोड़कर और अन्दर दया, दान या व्रत, भक्ति, काम, क्रोध का भाव, उसका भी लक्ष्य छोड़कर, एक समय की पर्याय को त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव की ओर झुकाने पर, पर्याय में सामान्यज्ञान अर्थात् परज्ञेय के आकार का मिश्रभाव न आकर,

अकेला ज्ञान का भाव आवे, उसे यहाँ सामान्यज्ञान कहते हैं। आहा...हा...! यह सामान्यज्ञान का अनुभव आना, इसका नाम जैनशासन, जैनधर्म, अनुभूति और मोक्षमार्ग की शुरुआत तब से होती है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है! आहा...हा...!

ऐसा होने पर भी, है तो ऐसा कि चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा, ध्रुवस्वभाव का आश्रय लेकर अनुभव में जो आनन्द आया और अनुभव में उस ज्ञान का ज्ञान हुआ, उसे यहाँ सामान्यज्ञान कहते हैं। उस ज्ञान को जैनशासन और धर्म कहते हैं। कहो! ऐसी बात है! कान में पड़ना मुश्किल है! आहा...हा...! यह जैनधर्म! जैनधर्म कहीं बाहर पक्ष में नहीं है।

अन्तर में वीतराग आत्मा, वीतरागस्वरूप से भरपूर भगवान आत्मा है! उसे शरीर, वाणी, मन, राग, परपदार्थ, ज्ञेय अर्थात् परवस्तु के आकार न होने देकर, परवस्तु जो ज्ञेय है, उसके आकार ज्ञान को न होने देकर.... आहा....हा...! ज्ञान को ज्ञान के आकार होने में जिस ज्ञान का अनुभव होता है, उसे यहाँ जैनधर्म और जैनशासन कहते हैं। भाषा भी कठिन! मार्ग ऐसा है, प्रभु!

अन्तरतत्त्व भगवान सच्चिदानन्द! सच्चिदानन्द प्रभु विराजता है। सत् अर्थात् शाश्वत्; चित् अर्थात् ज्ञान और आनन्द। वह ज्ञान और आनन्द से भरपूर समुद्र है! आहा...हा...! उसे अनुभव करने पर (धर्म होता है।) परज्ञेय जानकर जो ज्ञान वहाँ रुकता था, राग को जानकर, पुण्य को जानकर, शरीर, वाणी, लक्ष्मी आदि पर में ज्ञेयाकाररूप से ज्ञान रुकता था, वह अधर्म था। आहा...हा...! यह क्या कहा? ज्ञान की वर्तमान दशा अपने अतिरिक्त परज्ञेयाकार में ज्ञान रुकता था, उस ज्ञान की पर्याय को 'अधर्म' कहा जाता है। चन्दुभाई! आहा...हा...! यह गाथा तो ऊँची है! जैनधर्म पूरा किसे कहना? (वह कहते हैं)। आहा...!

पुण्य और पाप के परिणाम, वह राग है; वह कहीं जैनधर्म नहीं है। आता है (अवश्य) बीच में, परन्तु हेयरूप से – छोड़नेरूप से बीच में आता है। बहिन के (वचनामृत में) दृष्टान्त दिया था न? एक मुसाफिर को जिस नगर में जाना है, उसके लक्ष्य से (आगे बढ़ते हुए) रास्ते में बीच के नगर आते हैं, परन्तु उन नगरों को छोड़ता जाता है और जिस नगर में जाना है, उस लक्ष्य में (आगे बढ़कर) वहाँ चला जाता है, इसी प्रकार

धर्मी, अपना लक्ष्य जो आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, उसमें बीच में शुभ-अशुभराग आदि आवे, उसे छोड़ता जाता है और अन्तर ज्ञानस्वरूप में रमता है, उसे यहाँ 'जैनशासन' कहते हैं। आहा...हा...!

ऐसा होने पर भी, है? **तथापि....** ऐसा कहा न? ऐसा होने पर भी, **तथापि जो अज्ञानी है....** जिनका लक्ष्य आत्मा पर नहीं है और पुण्य-पाप, दया-दान तथा बाहर की संयोगी चीजों, उन पर जिनका लक्ष्य है, उन्हें ऐसा अनुभव में आता होने पर भी (वे अनुभव नहीं कर सकते)। धर्मी को अनुभव में आता होने पर भी... **(जो) अज्ञानी हैं, ज्ञेयों में आसक्त हैं....** आहा...हा...! है पुस्तक? (अज्ञानी) ज्ञेयों में आसक्त हैं, शरीर में, वाणी में, पाप के परिणाम में या पुण्य के परिणाम में (वे आसक्त हैं)। यह (सब) ज्ञान में परज्ञेय है (और) उस परज्ञेय में जो आसक्त है, उसे आत्मा अनुभव में नहीं आता। आत्मा अनुभव में (क्यों नहीं आता)? जैनशासन रूप से पर्याय वीतरागी क्यों नहीं होती? (क्योंकि) वह ज्ञान की वर्तमान दशा में अपने ज्ञायकभाव के अतिरिक्त परज्ञेयाकार को अन्दर ज्ञेय में रखते हुए पुण्य और पाप के परिणाम ज्ञेयाकाररूप से रखते हुए वहाँ रूकी हुई है; इसलिए उसे ज्ञानस्वभाव अनुभव में नहीं आता। समझ में आया? आहा...हा...!

मुमुक्षु – पुण्य के परिणाम परज्ञेय हैं।

समाधान – परदेश में जाते हैं – पर में जाते हैं। परिणाम अपने हैं, यह ज्ञानपर्याय (अपनी है), तथापि ज्ञेयाकार पर में जाती है, वहाँ रुक जाती है, इसलिए अन्दर में नहीं जा सकती। आहा...हा...! समझ में आया? सूक्ष्म बात है भाई! गाथा ही ऐसी है। आहा...! तुम्हारे (द्वारा पढ़ने के लिए) लिखी हुई है! है न इसमें?

आहा...! भगवान सच्चिदानन्द प्रभु! चैतन्य की ज्योति से जलहल! 'स्वयं ज्योति सुखधाम' चैतन्य ज्योति स्वयं – अपने से है और वह आनन्द का क्षेत्र है – सुख का धाम है, उस ओर की दृष्टि न करके (परज्ञेय में रुक जाता है) उस (स्वरूप की) दृष्टि करना और अनुभव होना, वह सामान्यज्ञान कहलाता है। उस पर्याय में (परज्ञेयों की) मिश्रितता नहीं (होती) और (मात्र) ज्ञाता का ज्ञान (होता है), उसे सामान्य ज्ञान कहते हैं।

चन्दुभाई ! आहा...हा... ! परन्तु उस ज्ञाता का ज्ञान (नहीं करके) ज्ञेयाकार – पर में रुक जाता है – लक्ष्मी में, स्त्री में, कुटुम्ब में, पाप में, और पुण्य में (रुक जाता है)। वे पुण्य-पाप के परिणाम ज्ञेय हैं, वह ज्ञान का स्वभाव नहीं है, आत्मा का स्वरूप नहीं है। (जो) स्वरूप नहीं है, उसमें (रुकने से) ज्ञान की पर्याय ज्ञेयाकार अर्थात् परज्ञेयाकार होकर रुकने से, उसे यह विद्यमान चीज अन्दर है, वह अनुभव में नहीं आती। आहा....हा... ! समझ में आया? क्यों अनुभव में नहीं आती? उसका कारण कहा।

विद्यमान चीज अन्दर पड़ी है, ज्ञानानन्द सहजानन्द प्रभु! परमेश्वर स्वरूप ही उसका है ! आहा...हा... ! भगवत् स्वरूप है ! अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप है। वह ख्याल में क्यों नहीं आता? (यह पहले कहा। अब) ख्याल में कैसे आया? कि उस पर का लक्ष्य छोड़कर स्व के अनुभव में आया, तब उस आत्मा का ख्याल पर्याय में आया, उसे सामान्यज्ञान, उसे धर्म, उसे जैनशासन, उसे अनुभूति कहा जाता है। आहा...हा... ! ऐसी बात है।

ऐसा होने पर भी, है न? **तथापि जो अज्ञानी हैं...** आहा...हा... ! **ज्ञेयों में आसक्त हैं...** आहा...हा... ! क्या कहते हैं? अन्दर दया, दान, और व्रत के विकल्प उठे, उसमें भी जो ज्ञान आसक्त है; वह ज्ञेय है, वह ज्ञान नहीं। पुण्य के – दया, दान, व्रत के परिणाम उत्पन्न हों, वे कहीं ज्ञान नहीं है, वे ज्ञेय हैं; उस ज्ञेयाकार में ज्ञान रुकने से अधर्म की दशा प्रगट होती है। आहा...हा... ! ऐसी बात सुनने मिलना भाग्य के बिना मिले ऐसा नहीं है ! ऐसी यह चीज है ! ! आहा...हा... !

दो बातें की हैं कि ऐसा भगवान ज्ञानस्वरूप, उसका अनुभव करने पर – पर्याय में ज्ञान का ज्ञान होने पर, पर्याय में आत्मद्रव्य का ज्ञान होने पर, वह वीतरागी पर्याय (प्रगट) होने पर, उसे जैनशासन, समकित और अनुभूति कहा। ऐसा होने पर भी, अज्ञानी उस ज्ञायकस्वभाव पर दृष्टि नहीं करके, ज्ञान की वर्तमान दशा को राग आदि, पुण्यादि परवस्तु जो ज्ञेय है, उस ज्ञेयाकार में रोककर अधर्म को उत्पन्न करता है। आहा...हा... ! झवेरचन्दभाई ! ऐसी बात है ! है न? लिखा है न अन्दर ? है न?

ऐसा होने पर भी, आहा...हा...! चैतन्यदल! अन्दर आनन्द का दल पड़ा है! यहाँ परदेश में तो नहीं हो (परन्तु) पहले दल के लड्डू होते थे 'दल के लड्डू!' जैसे मैसूरपाक होता है न? ऐसे एक दल के लड्डू होते थे, दल के! दल, दल! कहलाता है 'दल के लड्डू' (कहते थे) हमें तो सब – एक-एक अनुभव हो गया है न! बहुत छोटी उम्र से (यही किया है)! कुछ कामकाज -कुछ दूसरा नहीं किया, एक दुकान पाँच वर्ष (चलायी) बाकी इसके अतिरिक्त कुछ नहीं किया! शास्त्र... शास्त्र और शास्त्र!

मुमुक्षु – गुरुदेव! आप हमें दल के लड्डू जिमा रहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री – बात तो ऐसी है, भगवान! आहा...हा...!

भगवान आत्मा को कोई पुनरक्ति नहीं लगती। ऐसा चैतन्यस्वभाव से भरपूर, उसे पर के लक्ष्य में से छोड़कर, ज्ञान की पर्याय में परज्ञेय का ज्ञान होने पर, उस अटके हुए ज्ञान को छोड़कर जो ज्ञान की पर्याय, सामान्य में जाती है, उसका पर्याय, सामान्य अर्थात् ज्ञेयाकार के ज्ञान रहित के ज्ञान का ज्ञान, उसे सामान्यज्ञान कहते हैं – वह सामान्यज्ञान, वह जैनधर्म और समकित है। आहा...हा...! शब्द याद रहना कठिन पड़े! मार्ग ऐसा है, भगवान!

ऐसा होने पर भी (अर्थात्) ऐसा चैतन्य भगवान विराजमान होने पर भी, उसकी ओर का लक्ष्य करने से अनुभव हो, ऐसा होने पर भी (– ऐसा कहना है)। उस सामान्य त्रिकाल पर लक्ष्य करके... सामान्य अर्थात् परज्ञेय के आकार के भाव को छोड़कर, वह ज्ञानाकार जो ज्ञान हुआ, वह सामान्यज्ञान है। सामान्यज्ञान अर्थात् आनन्द है, उस सामान्यज्ञान में शान्ति और अनुभूति है – ऐसा उसका स्वभाव 'है'! ऐसा होने पर भी, ऐसा है न? **तथापि....** ऐसा कहा है। ऐसी स्थिति होने पर भी, आहा...हा...! **जो अज्ञानी हैं, ज्ञेयों में आसक्त हैं....** आहा...हा...! गजब काम किया है! यह दया, दान, व्रत के शुभभाव ये ज्ञान में परज्ञेय हैं। ज्ञान में ज्ञान स्वज्ञेय है और उस ज्ञान में – आत्मा में राग – पुण्य के (भाव) वह परज्ञेय है, परज्ञेय के आकार से रहता – अटकता ज्ञान, वह आत्मा का अनुभव नहीं कर सकता। आहा...हा...! समझ में आया?

ज्ञान की दशा में, जिसका जो ज्ञान है, उसकी तरफ न झुककर, जिसका वह ज्ञान

है, उसमें न झुककर; वह पर्याय, जिसका ज्ञान जिसमें नहीं है – ऐसे जो ज्ञेय अर्थात् पुण्य-पाप, दया, दान, काम-क्रोध और उसके फलरूप से यह धूल आदि – पैसा आदि धूल... आहा...हा...! उस ज्ञेयाकार से (अज्ञानी परिणमता है), वह ज्ञेय है, ज्ञान में पर (रूप से) जाननेयोग्य है। स्वज्ञेय तो स्वयं है परन्तु स्वज्ञेय का ज्ञान छोड़कर, परज्ञेय के आकार के ज्ञान में रुकता हुआ अज्ञानी, उसे आत्मा का ज्ञान नहीं होता। आहा...हा...! है? **....अज्ञानी हैं, ज्ञेय में आसक्त हैं....** आहा...हा...! शरीर मेरा, वाणी मेरी, मन मेरा, पैसा मेरा, यह तो फिर कहीं धूल में आगे गया, परन्तु अन्दर पुण्य और पाप के विकल्प मेरे (– ऐसा मानता है परन्तु) वह परज्ञेय है, वह स्वज्ञेय नहीं। अपने ज्ञान में जाननेयोग्य स्वज्ञेय आत्मा है और उसे छोड़कर, ज्ञान में जाननेयोग्य नहीं, उसे जानकर, (उसमें) रुकने से उसे ज्ञान का– आत्मा का अनुभव नहीं होता। समझ में आया? ऐसी अपूर्व बात है! आहा...!

यह प्रगट दृष्टान्त से बतलाते हैं – अब कहते हैं कि उसका दृष्टान्त देते हैं। तुम्हें एकदम न समझ में आये तो उसका हम दृष्टान्त देते हैं। दृष्टान्त से समझो! दृष्टान्त बताते हैं कि –

जैसे – अनेक प्रकार के शाकादि.... लौकी, घिसोड़ा इत्यादि अनेक प्रकार के शाक... **शाकादि भोजनों के सम्बन्ध से उत्पन्न....** इस शाक में नमक है न? उस शाक द्वारा नमक का स्वाद जिसे आता है, ऐसे जिसे ज्ञेय के आकार से ज्ञान का अनुभव आता है, वह मिथ्या है। आहा...हा...!

एक बार श्रीमद् राजचन्द्र 'राणपुर' के पास एक गाँव है वहाँ आये थे और मुमुक्षु भी एकत्रित हुए थे। (एक बार) कटोरी में ऐसे लौकी की सब्जी पड़ी थी... खाने के समय देते हैं न? ऐसे सब्जी देखी, वहाँ बोले कि 'इस सब्जी में नमक बहुत है!' परन्तु साहेब, आपने देखा? चखे बिना? (तब उन्होंने कहा) देखो! लौकी की सब्जी पानी में बफती है, तब अन्दर उसके रेशा नहीं टूटते, पानी में लौकी सिंकती है, उसमें उसके रेशा नहीं टूटते, रेशा! परन्तु अन्दर नमक अधिक डल जाये तो उस लौकी के टुकड़ों के रेशा ऐसे फैल जाते हैं, टुकड़े हो जाते हैं। देख! यह नमक अधिक पड़ गया है तो इस लौकी के शाक के अन्दर रेशा टूट गये हैं। बिना (चखे कह दिया)। इसमें समझ में आया? रेशा नहीं (होते)? यह

लौकी, पूरी लौकी होती है न? उसके रेशे एक सरीखे होते हैं, वे पानी में सब्जी पकाये तो उसके रेशा नहीं टूटते, थोड़ा नमक डाला हो (तो रेशा नहीं टूटते) परन्तु बहुत नमक डाले, तब उस लौकी के टुकड़ों के रेशा टूट जाते हैं – ऐसे टुकड़े हो जाते हैं, भिन्न-भिन्न हो जाते हैं – ऐसा श्रीमद् ने देखकर कहा कि इस शाक में नमक (अधिक) है! क्योंकि इस लौकी के रेशा टूट गये हैं, देखो! लौकी के टुकड़ों के रेशा टूट गये हैं। इसी प्रकार यह आत्मा, इसका ज्ञान परज्ञेय में जाता है, तब इसके ज्ञान का रस टूट जाता है। आहा...हा...!

समझ में आया? 'समझ में आता है' तो हमारे विश्राम का वाक्य है, एक (वाक्य बोलने के बाद) दूसरे वाक्य का विश्राम (होता है न)? तो यहाँ समझ में आता है? यह विश्राम है और समझे यह विश्राम है! बाकी समझे बिना सब अविश्राम – दुःख है। आहा...हा...!

कहते हैं कि... वैसे तो खिचड़ी में नमक डालते हैं, अभी तो कितने ही जगह चावल में भी नमक डालते हैं। ... खिचड़ी पकायी हो और उसे चाहिए उतना नमक डाला हो, फिर भी किसी घर में दो-चार-पाँच महिलायें हों, उसमें किसी महिला को पता न हो कि इसमें नमक डाला है तो फिर दूसरी महिला उसमें थोड़ा सा नमक डाल दे! ऐसा बना है! यह बना हुआ और यह सब देखा हुआ है, दो-चार बहिनों में जिसने डाला हो, उसने कहा नहीं हो तो दूसरी जाने कि इसमें – खिचड़ी में नमक नहीं है, लाओ, मैं दूसरा डालूँ! वह दूसरा नमक डाले वहाँ खिचड़ी बेस्वाद जैसी हो जाती है! और उसमें समधी को जीमने को कहा हो! सत्ताप्रिय समधी हो, सत्ताप्रिय समधी! समधी सामान्य हो और सत्ता प्रिय-अभिमानी समधी होता है। उसे जहाँ यह परोसे वहाँ उसे (ऐसा लगता है कि) यह! ऐसी यह सब्जी! वहाँ उसके घर का मालिक कहता है यह किसने पकाया? तो (वे) बहिनें कहें, बोलना नहीं, अभी क्रोध फटा है! हम कहेंगे यह अमुक दो व्यक्तियों से भूल से डल गया है! यह ऐसे यह ज्ञान की पर्याय में जिसे ज्ञायकस्वरूप की – एकाकार की खबर नहीं, वह परज्ञेयों में एकाकार होकर, जैसे शाक को खारा कर डाला, वैसे ज्ञान की पर्याय को ज्ञेयाकार कर डाला। पर के ज्ञेयाकार अर्थात् पर जो यह चीज ज्ञात होती है, उस ओर के लक्ष्य में ही ज्ञान को रोका। समझ में आया? भाषा तो सादी है, भगवान! आहा...हा...!

भगवान! तेरी बात है न, नाथ! तेरे अन्तर की बात है न, प्रभु! आहा...हा...! यह भगवान है तो भी क्यों हाथ नहीं आता? (तो कहते हैं कि) उसकी ओर का लक्ष्य नहीं परन्तु उसकी पर्याय में ज्ञेय जो पैसा, इज्जत, कीर्ति, लक्ष्मी, शरीर, पुण्य और पाप के परिणाम, उन पर लक्ष्य जाने से वह ज्ञेयाकार अर्थात् जो ज्ञात होने योग्य चीज है, उसके आकार ज्ञान हो जाता है और उसके आकार ज्ञान होने पर ज्ञानस्वभाव का आकार छूट जाता है। इसलिए यह ज्ञेयाकार ज्ञान, अज्ञान है। आहा...हा...! भगवानजी भाई! ऐसी बातें हैं बापू! आहा....हा....!

भगवान आत्मा स्वज्ञेय है, उसकी वर्तमान ज्ञानदशा को स्वज्ञेय में झुकाने से, पर के ज्ञेयाकार की ज्ञान की पर्याय का लक्ष्य छोड़कर अन्तर ज्ञानस्वभाव में आने पर, उसे ज्ञान का जो अनुभव होता है, वह सामान्य का अनुभव है अर्थात् ज्ञेय के आकाररहित, अकेले ज्ञान के आकार का अनुभव है, वह सामान्य का अनुभव है, उसे जैनधर्म कहते हैं। आहा...हा...! यह किस प्रकार का उपदेश!

यह गाथा ऐसी है! वहाँ तो हमारे हजारों बार पढ़ी जा चुकी है! व्याख्यान में तो अठारह बार पढ़ी जा चुकी है और एकान्त में तो (संवत्) 78 से पढ़ी जाती है! 78 की साल (में यह पहली बार) मिला, 78 के फाल्गुन महीने में मिला, आहा...हा...! और पढ़ा... और अन्दर से एकदम ओम् की ध्वनि आयी!! यह तो 78 की बात है। पहले से जो इसका ख्याल न करे, उसे यह क्या चीज है? उसके ख्याल में आता नहीं।

अन्दर भगवान आत्मा चैतन्य ज्योत 'स्वयं ज्योति सुखधाम'! स्वयं ज्योति स्वयं से स्वयं है, उसका कोई कर्ता नहीं। उसे रहने को–टिकने को किसी पर की अपेक्षा नहीं है – ऐसा जो शाश्वत् तत्त्व अर्थात् ध्रुव तत्त्व, उसका लक्ष्य करके जो पर्याय में आनन्द और ज्ञान का अनुभव होता है, उसे सामान्य अनुभव कहा जाता है। उसमें ज्ञेयाकार ज्ञान का अभाव रहता है। आहा...हा...! परन्तु जिसे उसका पता नहीं, वह अज्ञानी, जैसे शाक में नमक डालने से शाक का स्वाद न लेकर इस शाक द्वारा नमक का स्वाद लेता है। शाक द्वारा नमक का (स्वाद) लेता है; अकेले नमक का स्वाद अलग नहीं लेता। शाक में खारापन है, उसका अलग स्वाद नहीं लेता परन्तु शाक द्वारा लेता है। है? **...अनेक प्रकार के शाकादि भोजनों....** यहाँ रोटी में भी नमक डालते हैं न? कितनी ही जगह तो अभी रोटी में भी डालते हैं, कोई चावल में भी डालते हैं – ऐसा हो गया है। वरना तो खिचड़ी में डालते

थे, यह तो पता है परन्तु कितनी ही जगह चावल में भी डालते हैं। यहाँ तो पूरा वेश अनुभव में आता है न! अतः चावल में भी फिर कोई जरा नमक डालते हैं। 'भोजन' शब्द पड़ा है न? भोजन अर्थात् चावल, रोटी, रोटी, दाल, चावल इत्यादि। इन **...भोजनों के सम्बन्ध से उत्पन्न सामान्य लवण के तिरोभाव....** अर्थात्? अकेला नमक का स्वाद आना चाहिए, वह ढँक गया और शाक के स्वाद द्वारा नमक का स्वाद आया; अर्थात् नमक ढँक गया। आहा...हा...! ऐसी बात है।

इन **....भोजनों के सम्बन्ध से उत्पन्न सामान्य लवण के तिरोभाव....** (अर्थात्) अकेले नमक का स्वाद अलग आना चाहिए, वह ढँक गया (और) शाक द्वारा खारापन दिखायी दिया। 'लौकी खारी है, यह घिसोड़ा खारा है, यह घिसोड़े का शाक खारा है' – ऐसा वह बोलता है परन्तु खारा तो नमक है, शाक कहीं खारा नहीं होता, शाक तो शाक है और नमक वह नमक है – ये दोनों चीजें भिन्न हैं। आहा...हा...! ऐसा दृष्टान्त तो साधारण लोगों को घर में अनुभव में आता है – ऐसा तो यह दृष्टान्त है।

यह लवण का तिरोभाव (अर्थात्) शाक द्वारा अकेले नमक का स्वाद (लेने पर) उसे नमक का स्वाद ढँक जाना और शाक के स्वाद में नमक दिखता है **....और विशेष लवण के आविर्भाव से अनुभव में आनेवाला....** अर्थात्? शाक द्वारा, रोटी द्वारा नमक का स्वाद (आना) इन **...विशेष लवण के आविर्भाव से अनुभव में आनेवाला जो (सामान्य के तिरोभावरूप और शाकादि स्वाद भेद से भदेरूप–विशेषरूप)....** (अर्थात्) लौकी खारी, रोटी खारी, रोटी खारी... ऐसा वह मानता है परन्तु खारा तो नमक है, वह उसे अलग दिखायी नहीं देता। आहा...हा...! है? **(भेदरूप–विशेषरूप) लवण है, उसका स्वाद अज्ञानी शाक लोलुप मनुष्यों को....** श्रीमद् ने तो खाने से पहले ऐसा कह दिया था। देख! लौकी के शाक के रेशा टूट गये हैं। उसमें नमक अधिक डल गया है। देखो! परन्तु साहब, आपने चखा नहीं न? परन्तु देख! देख न! वे तो ज्ञानी थे न! वे कहीं गृद्धि नहीं थे। थे संसार में, तथापि समकिती थे। शाक को देखते ही कहा कि शाक में नमक अधिक है, चख कर देख! (चख कर देखा तो पता पड़ा कि) हाँ! है, नमक अधिक! आपने देखे बिना (कहा)? दिखता है या नहीं? देखो! नमक अधिक पड़ गया है, यह रेशा टूट गये हैं! इसी प्रकार इस ज्ञान में – ज्ञान की पर्याय में अकेले ज्ञेयाकार को जानने से ज्ञान

का स्वभाव टूट गया है। ज्ञान का स्वभाव उसे दृष्टि में नहीं आता। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं! नाईरोबी में ऐसी बातें!

मुमुक्षु – हमारा भाग्य! अहो भाग्य!

पूज्य गुरुदेवश्री – बात सच्ची! वस्तु ऐसी है, बापू! आहा....हा...!

मुमुक्षु – तीर्थंकर-समान वाणी है, तीर्थंकर–समान!

पूज्य गुरुदेवश्री – यह तीर्थंकर की ही वाणी है! वीतराग की ही यह वाणी है!! त्रिलोकनाथ सीमन्धर भगवान विराजमान हैं, उनके पास कुन्दकुन्दाचार्य गये थे, वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया है और अर्थ करनेवाले टीकाकार भले भगवान के पास नहीं गये थे परन्तु इस (अन्दर के निज) भगवान के पास गये थे, वे उन भगवान का आशय समझ गये! आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं.... विशेष लवण का आविर्भाव.... क्या कहा? अकेला नमक स्वाद में पृथक् आना चाहिए, वह न आकर उस नमक का स्वाद शाक द्वारा आता है, वहाँ उस नमक के स्वाद का तिरोभाव हो गया (अर्थात्) अकेले नमक का स्वाद ढँक गया और शाक का स्वाद आविर्भाव हुआ। अकेले शाक द्वारा ही नमक अनुभव में आया, अलग (नमक) अनुभव में नहीं आया। यह तो दृष्टान्त है, हों! आहा...हा...! **...अन्य की सम्बन्धरहितता से उत्पन्न सामान्य लवण के आविर्भाव और विशेष के तिरोभाव से अनुभव में आनेवाला जो एकाकार अभेदरूप लवण है, उसका स्वाद नहीं आता...** (अर्थात्) अज्ञानी को अकेले नमक का स्वाद अलग नहीं आता, क्योंकि वह शाक और रोटी या चावल या खिचड़ी, उसमें गृद्धि हुआ है, (इसलिए) उसे नमक का पृथक् स्वाद नहीं आता।

(अब कहते हैं) **....परमार्थ से देखा जाये....** कहते हैं कि भले शाक द्वारा वह नमक उसने खारा देखा (परन्तु) वास्तव में देखो तो **विशेष के आविर्भाव से अनुभव में आनेवाला....** (अर्थात्) शाक द्वारा जो अनुभव में आता, वही स्वयं सामान्य (लवण का) अनुभव है परन्तु उसे भेद का पता नहीं पड़ता। शाक के गृद्धि को नमक का – लवण खारापन भिन्न है, उसका इसे पता नहीं चलता। **(विशेष के आविर्भाव से अनुभव में आनेवाला) क्षाररसरूप लवण ही सामान्य के आविर्भाव से अनुभव में आनेवाला**

(क्षाररसरूप)लवण है.... (अर्थात्) शाक द्वारा जो खारा (खारापन) लगता था, वही अकेला नमक – नमक द्वारा (खारापन) आवे तो वह लवण तो वह का वही है परन्तु (पहले) शाक द्वारा आता (था) और उसी (नमक को) जब शाक द्वारा (अनुभव में लेना) छोड़कर अकेले परमार्थ से जहाँ नमक को देखे तो वह खारा नमक अलग लगता है। शाक तो अलग रह जाता है, कहीं लौकी खारी नहीं है, घिसोड़ा खारा नहीं है, रिंगड़ा खारा नहीं है। आहा...हा...! क्या कहलाता है (तुम्हारे)? तुम्हारे नाम भी भूल जाते हैं।

मुमुक्षु – गलका?

पूज्य गुरुदेवश्री – गलका है, (वह) पतली नहीं छोटी?

मुमुक्षु – ग्वार?

पूज्य गुरुदेवश्री – ग्वार... ग्वार...! ग्वार आती है न? तुम्हारे नाम भूल जाते हैं! इस धर्म के नाम के सामने वे नाम याद नहीं रहते। वह ग्वार खारा लगता है। (वास्तव में) ग्वार खारा नहीं है, खारा तो नमक है परन्तु अज्ञानी को ग्वार द्वारा नमक के अनुभव का स्वाद आता है परन्तु जो ग्वार द्वारा नमक का स्वाद आता है, वही नमक, नमक के कारण स्वाद में आवे तो उसका (अकेला नमक) भिन्न पड़ जाता है। उसमें शाक द्वारा जो नमक का स्वाद है, वही स्वाद परमार्थ से स्वयं का – नमक का स्वाद है, शाक का नहीं; वह तो इसे भ्रम हो जाता है। समझ में आया? यह दृष्टान्त तो सादा आया है। आहा...हा...!

(इसी प्रकार) ऐसा अनेक प्रकार के ज्ञेयों के आकारों के साथ.... अब क्या कहते हैं? देखो, इसलिए इस प्रकार (अर्थात् पहले) जो दृष्टान्त (दिया था, उसी प्रकार) **अनेक प्रकार के ज्ञेयों के आकारों के साथ मिश्ररूपता से उत्पन्न....** (अर्थात्) जैसे रोटी और शाक द्वारा नमक (अनुभव में) आता था, ऐसे इसे ज्ञेय द्वारा ज्ञान जानने में आता है। अज्ञानी को ज्ञेय अर्थात् जानने योग्य पदार्थ द्वारा ज्ञान का अनुभव आता है परन्तु ज्ञान द्वारा ज्ञान का अनुभव नहीं आता। आहा....हा....! जैसे शाक द्वारा नमक का स्वाद आता है परन्तु अकेले नमक का स्वाद उसे अलग नहीं आता। इसी प्रकार अज्ञानी को ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय द्वारा ज्ञान जानता है परन्तु ज्ञेयरहित ज्ञान अलग है, उसे वह नहीं जानता। आहा...हा...!

ऐसी चीज सूक्ष्म पड़े (परन्तु) मार्ग तो ऐसा है, भाई ! अभी तो बाहर में लोगों को व्यवहार में चढ़ा दिया है। वह इसमें से निवृत्त नहीं होता। अन्दर क्या चीज है? जिसे ढूँढ़ने से भगवान मिले ! आहा...हा... ! धूलधोया... धूलधोया होता है न? (वह) स्वर्णकार के घर के समीप (धूल) धोता है तो उसमें से सोने का कण अलग देखता है, उसमें चार प्रकार होते हैं। धूलधोया होता है न? वह स्वर्णकार की दुकान के पास धूल देखे ! उसमें चार प्रकार होते हैं –एक धूल है (उसमें) एक चूड़ी का चूरा, टुकड़ा अन्दर होता है। यह चूड़ियाँ होती हैं न? वह भी साथ में बारीक, पीला दिखता है। एक पीतल का पीला टुकड़ा बारीक दिखता है और एक सोने का पीला (टुकड़ा) बारीक दिखता है, धूलधोये को चार दिखते हैं। हमने तो सब नजर से देखा है ! स्वर्णकार की दुकान में छोटी उम्र का लड़का (काम) करता हो न, (उससे पूछा था) तुम क्या करते हो? (तो कहता था) देखो ! यह हम अलग करते हैं ! एक तो धूल होती है, एक तो यह चूड़ी फूट गयी हो और उस धूल में बारीक चूरा हो, वह भी पीला दिखता है और एक पीतल का टुकड़ा हो, वह पीला दिखता है; एक सोने का टुकड़ा हो, वह पीला दिखता है परन्तु वह सोना उठा लेता है, जिसका वजन है, तोल है, वह यह है। चूड़ी का टुकड़ा इतना था, फिर भी ऐसा वजन नहीं, पीतल का टुकड़ा इतना हो, उसका वजन इतना नहीं, धूल में ऐसा वजन नहीं। सोने का टुकड़ा बारीक (हो तो भी) उसका वजन अधिक होता है। वह अधिक होता है, इसलिए उसे उठा लेता है। इसमें समझ में आया? आहा...हा... !

इसी प्रकार इस आत्मा को देखनेवाला, शरीर के संयोग का लक्ष्य छोड़ देता है। आहा...हा... ! राग का लक्ष्य छोड़ देता है, अकेली पर्याय का लक्ष्य छोड़ देता है; अकेला त्रिकाली ज्ञायकभाव है, वहाँ दृष्टि देता है – यह चौथा बोल है। आहा....हा... ! इसमें कुछ समझ में आया? सूक्ष्म बात है ! यह गाथा ही ऐसी है। आहा...हा... !

मुमुक्षु – समझने में बारीक है।

पूज्य गुरुदेवश्री – अन्तर की वस्तु अरूपी है न ! भगवान अरूपी है, वह पुण्य और पाप के विकल्प से भी पकड़ में आये ऐसा नहीं है। वह शुभ क्रियाकाण्ड का जो रागभाव (आता है), उससे वह पकड़ में आये – ऐसा नहीं है। क्योंकि वह तो ज्ञेय–परवस्तु

है, ज्ञेयाकार में ज्ञान को रोकने से ज्ञान आच्छादित हो जाता है, अकेले ज्ञेयाकार में ज्ञान को रोकने से ज्ञान का अनुभव नहीं रहता। अकेले ज्ञेयाकार ज्ञान का अनुभव, वह अज्ञान है।

उसमें ज्ञेयाकार ज्ञान का लक्ष्य छोड़कर... आहा...हा...! है? **इस प्रकार अनेक प्रकार के ज्ञेयों के आकारों के साथ मिश्ररूपता से उत्पन्न सामान्य के तिरोभाव....** यह क्या कहा? कि अनेक ज्ञेय– पुण्य, पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध, शरीर, वाणी, मन, लक्ष्मी, पुत्र, मकान, इज्जत – इन सभी ज्ञेयाकारों में ज्ञान रुकने से.... देखो! है? **ज्ञेयों के आकारों के साथ मिश्ररूपता से....** (अर्थात्) जो ज्ञात होने योग्य पृथक चीज है, उसमें ज्ञान मिश्ररूप हो गया है। मेरी चीज अलग है – ऐसा उसे पता नहीं है। आहा....हा....! अधिकार जरा ऐसा है! **ज्ञेयों के आकारों के साथ मिश्ररूपता से उत्पन्न सामान्य के तिरोभाव....** उसे जो अकेला ज्ञान है, उसका पर्याय में अनुभव नहीं आता, उसे यह जो ज्ञेय है, उसका अनुभव आता है। इसमें कुछ समझ में आया? आहा...हा...!

स्वज्ञान के अतिरिक्त जितने परज्ञेय हैं – चाहे तो दया, दान, काम, क्रोध, और यह शरीर, वाणी, मन, स्त्री, पुत्र, परिवार, व्यापार, धन्धा – यह सभी ज्ञेय, ज्ञान में भिन्न है, तथापि इन ज्ञेयाकारों में ज्ञान रुकने से, ज्ञान वहाँ रुकने से, अकेले ज्ञान का उसे पृथक् स्वाद नहीं आता। आहा...हा...! बात तो बहुत संक्षिप्त है। तिरोभाव (अर्थात्) अकेला ज्ञान है, वह ढँक जाता है। ज्ञेयाकार में ज्ञान को रोकने से; जैसे शाक के आड़ में नमक को देखने से नमक का भाव तिरोभूत – ढँक जाता है। वैसे ही भगवान आत्मा ज्ञान की पर्याय में परज्ञेयाकार का ज्ञान होने पर, सामान्य ज्ञान ढँक जाता है, मूल ज्ञान उसके ध्यान में नहीं आता। आहा...हा...! ऐसी गाथा है भाई यह! अकेले चैतन्य के सामान्य स्वभाव को अनुभव करना, उसे यहाँ जैनशासन कहते हैं। पुण्य-पाप, राग और परज्ञेयाकार को छोड़कर अकेला ज्ञानस्वभाव ऐसा आत्मा, उसे अनुभव करना, वह वीतरागीदशा, वह जैनशासन, वह धर्म, वह अनुभूति है। आहा...हा...!

कठिन शब्द सब ऐसे हैं! दूसरा रट गया है, उसमें यह रटने जाये तो अभी कठिन पड़ेगा! पूरा अभ्यास ही दूसरा हो गया है! ओहो...हो...! छह-सात घण्टे नींद में जाते हैं, छह-सात घण्टे व्यापार के पाप में जाते हैं, दो-चार घण्टे स्त्री, और पुत्र को प्रसन्न रखने में

जाते हैं, एकाध घण्टे कुछ सुनने जाये तो फिर यह बात मिलती नहीं, (इसलिए) इसे समझ में नहीं आता। (दूसरी) बातें मिलती है। ऐसा करना... ऐसा करना... पूजा करना... भक्ति करना... व्रत करो... यह करो...! आहा....हा....!

यहाँ कहते हैं कि यह सब पूजा, भक्ति, व्रत आदि का विकल्प – राग है, उसके लक्ष्य से जो ज्ञान रहे, उसमें सामान्य ज्ञान ढँक जाता है, अकेला ज्ञान पृथक् है, उसका अनुभव नहीं रहता; यह ज्ञेय का अनुभव होने पर ज्ञेयाकार ज्ञान परिणमते, ज्ञेयाकार से पृथक् ज्ञान इसे अनुभव में नहीं आता। कहो, यह तो समझ में आता है या नहीं? है? सामान्य का तिरोभाव और विशेष का आविर्भाव (अर्थात्) इस ज्ञेयाकार से इसका ज्ञान ज्ञात होता है (अर्थात्) इसका ज्ञान करता हूँ इसका ज्ञान करता हूँ, इसका ज्ञान करता हूँ, राग का ज्ञान करता हूँ, पुण्य का ज्ञान करता हूँ, पाप का ज्ञान करता हूँ, कपड़े का (ज्ञान करता हूँ)! यह कपड़े का धन्धा होता है न? उसका ज्ञान करता हूँ, यह कपड़ा ऐसे रंग का और यह कपड़ा ऐसा! इस ज्ञान में अकेला ज्ञेय (आता है)। ज्ञेय में ज्ञान रुक गया है आहा...हा...! रायचन्दभाई! ऐसी बातें हैं! विशेष का आविर्भाव, आहा...हा...! यह ज्ञेयाकार ज्ञान ही ज्ञात होता है, विशेष अर्थात् यह सामान्य ज्ञान जो ज्ञेयाकार रहित भिन्न है, उसकी दृष्टि इसे नहीं पड़ती है, इसलिए इसे आत्मा अनुभव में नहीं आता। इसलिए इसे सम्यग्दर्शन और अनुभव नहीं होता। आहा...हा...!

अरे! ऐसी बातें सुनते हुए कठिन पड़ती है, उसमें इसे अन्दर में उतारना! (उसके लिये) पुरुषार्थ चाहिए, बापू! भगवान! अनन्त पुरुषार्थ चाहिए! आहा...! ऐसी बात सुनने को ग्यारहवीं गाथा में (आता) है कि ऐसे उपदेश का तत्त्व विरल है, कहीं–कहीं है, बाकी का दूसरा उपदेश तो घर-घर में है परन्तु आत्मा का राग से भिन्न अनुभव और ज्ञानाकार की बात – विरल–विरल कहीं है, यह ग्यारहवीं गाथा में आया था। ग्यारहवीं गाथा हमने पढ़ी न, उसमें आया था।

यहाँ यह कहते हैं, यह ज्ञान जो उत्पन्न हुआ, ज्ञेयाकार के आकार ज्ञान हुआ, वह सामान्य ज्ञान का तिरोभाव (हुआ)। (अर्थात्) अकेले ज्ञान का अनुभव होना, वह ढँक गया और विशेष ज्ञान का आविर्भाव (अर्थात्) यह ज्ञेयाकार ज्ञान अनुभव में आने पर **विशेषभावरूप, अन्य ज्ञेयाकार के संयोगरहितता से उत्पन्न हुआ....** अब यह (जीव)

है वह तो अज्ञानी है। **ज्ञेयलुब्ध जीवों को स्वाद में आता है, किन्तु अन्य ज्ञेयाकार की संयोगरहितता से उत्पन्न...** क्या कहा यह? अन्य ज्ञेयाकार से होनेवाला ज्ञान, उसे रोककर **संयोगरहितता से उत्पन्न सामान्य के आविर्भाव....** (अर्थात्) अकेले ज्ञान का अनुभव और विशेष (ज्ञेयाकार ज्ञान) का ढँक जाना, वह **एकाकार अभेदरूप ज्ञान वह स्वाद में नहीं आता....** अज्ञानी को ज्ञेयाकार में रुकने से, अकेला आत्मा भगवान! उसका स्वाद उसे नहीं आता। शाक के खारेपन में रुकने से अकेले नमक का स्वाद उसे नहीं आता। इसी प्रकार आत्मा ज्ञेयाकार में रुकने से अकेले ज्ञान का स्वाद उसे नहीं आता। आहा...हा...! ऐसा धर्म! मार्ग ऐसा है, बापू! भगवान तेरा स्वरूप ही अलग है। आहा...हा...!

कहते हैं उसे अनुभव में नहीं आता। क्या नहीं आता अनुभव (में?) ज्ञान–आत्मा को परज्ञेय के आकार में रुकने से उससे भिन्न उसे अनुभव में नहीं आता। वह एक ही देख रहा है – यह राग है और यह पुण्य है और यह पाप है। इस पुण्य से पैसे मिले और इससे ऐसा हुआ, इसे रंकपना मिला और यह दरिद्र हुआ और हम सेठ हैं! आहा....हा...! इस (प्रकार) ज्ञान, ज्ञेयाकार में रुकने से उसे भिन्न ज्ञान अर्थात् आत्मा का स्वाद उसे अनुभव में नहीं आता परन्तु जहर का स्वाद आता है, वह ज्ञेयकृत जो ज्ञेयाकार हुआ ज्ञान है, वह रागवाला–जहरवाला ज्ञान है, वह जहर का अनुभव अज्ञानी को आता है। आहा...हा...! समझ में आया? यह गाथा ही ऐसी है!

और परमार्थ से विचार किया जाये तो.... जो ज्ञान ज्ञेयाकार द्वारा जानने में आता था, **वही ज्ञान सामान्य के आविर्भाव से अनुभव में आता है...** ज्ञान तो वह का वह है। ज्ञेयाकार में जो ज्ञान रुकता था, वह ज्ञान, इस ओर देखने पर वही ज्ञान पर से भिन्न पड़ जाता है। जो ज्ञेयाकार से ज्ञान जानने में आता था, वही ज्ञान ज्ञानाकार से जानने में आवे तो ज्ञान तो वही है। आहा...हा...! सूक्ष्म भाषा बहुत! अकेला न्याय का विषय है न! अकेला सिद्धान्त! सन्त–मुनि अन्तर की बातें करते हुए उसे दृष्टान्त देकर भी सरल कर दिया है, फिर भी समझना, अभ्यास न हो तो उसे समझना कठिन पड़ जाता है। आहा...हा...!

कहते हैं कि स्वाद में आता नहीं। **लेकिन परमार्थ से विचार किया जाये तो, जो ज्ञान विशेष के आविर्भाव से अनुभव में आता है, वही ज्ञान सामान्य के आविर्भाव**

से अनुभव में आता है।.... (अर्थात्) इस ज्ञान को ज्ञेयाकार से देखने पर ज्ञेय–आकार अनुभव था परन्तु उसे छोड़कर ऐसे (स्वयं को) देखे तो ज्ञान का अनुभव होता है, ज्ञान तो वह का वही है, वह ज्ञान की वर्तमान पर्याय ज्ञेयाकार में रुकने से ज्ञान वहाँ दिखता है परन्तु उसी ज्ञान को ऐसे (अन्तर्मुख होकर) देखे तो ज्ञान का आविर्भाव – प्रगट दिखायी देता है और ज्ञेयाकार (ज्ञान) तिरोभूत हो जाता है, ढँक जाता है। ज्ञेयाकार ज्ञान वहाँ लक्ष्य में नहीं रहता। आज बहुत सूक्ष्म आया, बापू! कहो, धन्नालालजी! बात तो ऐसी है।

मुमुक्षु – माल –माल की बात है!

पूज्य गुरुदेवश्री – मुद्दे की बात है परन्तु जीव ने दरकार नहीं की है। अनन्त काल बाहर की महत्ता और बाहर की महिमा में रुक (गया है)। जो ज्ञान पर द्वारा अनुभव में आता है, वह ज्ञान अपना स्वभाव है, वही ज्ञान ज्ञान से अनुभव में आता है। यहाँ (अन्तर्मुख) नजर करे तो ज्ञान अनुभव में आता है, पर में नजर करे तो ज्ञेयकृत अनुभव में आता है। ज्ञेय के आकारवाले ज्ञान को परमार्थ से देखें तो ज्ञान है, उसका ज्ञान जुदा है, ज्ञेयाकार (रूप) वह ज्ञान हुआ नहीं है। आहा...हा...! कठिन विषय आया।

जो ज्ञान विशेष के आविर्भाव से अनुभव में आता है, वही ज्ञान, सामान्य के आविर्भाव से अनुभव में आता है.... आहा...हा...! जो परज्ञेय हैं – राग, पुण्य, दया, दान, उनके आकार जो ज्ञान ज्ञात होता है, वही ज्ञान, स्वभावसन्मुख देखे तब तो ज्ञान का ही अनुभव आता है, ज्ञेयकृत अनुभव वहाँ ढँक जाता है। आहा...हा...! गाथा के सामने शब्द रखा है।

मुमुक्षु – पढ़नेवाले तो आप हैं, उसका रहस्य खोलनेवाले तो आप हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री – सूक्ष्म बात है बापू! आहा...हा...! **वही ज्ञान सामान्य के आविर्भाव से अनुभव में आता है....**

अलुब्ध ज्ञानियों को.... (अर्थात्) जिसे परज्ञेय हैं, उसमें लुब्ध नहीं हैं। यह आत्मा–स्वभाव है, उस पर जिसका प्रेम और रुचि है तथा उसके अतिरिक्त परज्ञेयों में जिसकी लुब्धता नहीं है, जिसमें रति नहीं है, आसक्ति नहीं है, एकत्व नहीं है। **वही ज्ञान सामान्य के आविर्भाव से अनुभव में आता है....** आहा...हा...! **अलुब्ध ज्ञानियों**

को.... (अर्थात् जो) ज्ञेयाकार ज्ञान में लुब्ध नहीं उन्हें ज्ञान, ज्ञान में अनुभव में आता है। आहा...हा...! लुब्ध अज्ञानी को वह ज्ञान ज्ञेयकृत द्वारा अनुभव में आता है। ज्ञान तो वही है।

देखो! एक बात ऐसी है कि यह त्रिकाल ज्ञान है न, उसकी वर्तमान पर्याय है न– अवस्था! उसमें यह जो (पर) ज्ञात होता है, वह ज्ञात नहीं होता; ज्ञान की पर्याय ज्ञात होती है, क्योंकि ज्ञान की पर्याय यहाँ ज्ञान में है और जो ज्ञेय ज्ञात होते हैं, वे पृथक् हैं; इसलिए उन ज्ञेयों का जो ज्ञान होता है, वह (वास्तव में तो) ज्ञान का ज्ञान होता है। यह क्या कहा? जो यह वस्त्र और कपड़ा, गहने और अमुक और अमुक और स्त्री और पुत्र और.... उनका जो ऐसा ज्ञान होता है, वह ज्ञान, ज्ञान की पर्याय में स्वयं से स्वयं का होता है, उसका नहीं; उस सम्बन्धी का ज्ञान स्वयं को, स्वयं से स्वयं द्वारा स्वयं में होता है परन्तु अज्ञानी को ऐसा लगता है कि वह वस्तु है, इसलिए मुझे ज्ञान होता है परन्तु उस वस्तु में यह ज्ञान कहाँ है? आहा...हा...! परवस्तु में यह ज्ञान नहीं, तथापि इसे ऐसा लगता है कि 'यह परवस्तु देखता हूँ और इसीलिए मुझे ज्ञात होती है, इस कारण मुझे ज्ञान होता है। गुड़ है, (उसे) जानता हूँ, इसलिए गुड़ के कारण मिठास का ज्ञान होता है।' परन्तु यहाँ पर्याय में मिठास का (जो) ज्ञान (हुआ वह) गुड़ की अपेक्षा बिना हुआ है। स्वयं के कारण होने का (ज्ञान का) स्वभाव है, उसे अज्ञानी भूल जाता है। आहा...हा...! आज पूरे घण्टे सूक्ष्म आया! भभूतमलजी!

(अज्ञानी ऐसा मानता है कि) यह पैसे का स्वाद आया! (पैसे का) स्वाद आता होगा? धूल का स्वाद नहीं आता परन्तु 'यह मेरा है' – ऐसी ममता का उसे स्वाद आता है। उस ममता के स्वाद में, जो ज्ञान का स्वाद अनुभव में आता है, वही ज्ञान, ममतारहित ज्ञान अनुभव करे तो अकेला ज्ञान अनुभव में आता है। ममता द्वारा ज्ञान ज्ञात होता है, उसी ज्ञान को ज्ञान द्वारा जाने तो ममतारहित ज्ञान, ज्ञान जानता है। आहा...हा...! याद रखना कठिन पड़े! ऐसी बात है प्रभु! बहुत सूक्ष्म नहीं, दृष्टान्त देकर स्थूल कर दिया है। दृष्टान्त देकर तो स्थूल कर दिया है।

शाक द्वारा जैसे क्षार ज्ञात होता है, वैसे यह ज्ञान ज्ञेय द्वारा ज्ञात हो, (वह) मिथ्याज्ञान

है। ज्ञान ज्ञान के द्वारा ज्ञात होता है। ज्ञान, ज्ञेय द्वारा ज्ञात न होकर ज्ञान ज्ञेय को जानता है। वह ज्ञेय को ज्ञेय है, इसलिए जानता है – ऐसा नहीं है। उस ज्ञेय को जानने में ज्ञान की पर्याय का स्वयं का स्व-पर प्रकाशक सामर्थ्य है; इसलिए ज्ञेय पृथक् है, उसे जानता है – ऐसा कहना वह व्यवहार है परन्तु उसे ज्ञेय को जानने की ज्ञान में स्वयं की शक्ति से स्व–पर को जानता है, वह ज्ञेय की अपेक्षा बिना (जानता है)। वह ज्ञान की पर्याय सामान्य है, जिसे पर की अपेक्षा है नहीं। जिस ज्ञान की पर्याय में पर की अपेक्षा आ जाये, वह विशेष है, वह अज्ञान है, पर में लुब्ध है। अर...र...! ऐसा कठिन पड़े।

वही ज्ञान, सामान्य के आविर्भाव से अनुभव में आता है। अलुब्ध ज्ञानियों को तो जैसे सैंधव की डली.... (अर्थात्) नमक की डली **अन्य द्रव्य के संयोग का व्यवच्छेद करके....** अन्य द्रव्य के संयोग का (अर्थात्) शाक को दूर करके **केवल सैंधव का ही अनुभव किये जाने पर...** आता है (अर्थात्) अकेले नमक का स्वाद लिया जाये तो **सर्वतः एक क्षारत्व के कारण क्षाररूप से स्वाद में आती है...** यह दृष्टान्त (हुआ)। **उसी प्रकार आत्मा भी, परद्रव्य के संयोग का व्यवच्छेद करके....** आहा...हा...! ज्ञान प्रभु! पर तरफ का लक्ष्य है, उसे छेद करके, निकाल करके अकेले ज्ञान में ज्ञान को देखे तो उसे ज्ञान का–आनन्द का स्वाद आवे। ज्ञेय को देखकर स्वाद आता है, वह जहर का–राग का स्वाद है। ज्ञेय को देखकर जो स्वाद दिखता है कि यह तो बहुत मजा आया (वह तो जहर का स्वाद है)।